द्वितीय वल्ली

सम्बन्ध—इस प्रकार परीक्षा करके जब यमराजने समझ लिया कि नचिकेता दृढ़ निश्चयी, परम वैराग्यवान् एवं निर्भीक है, अतः ब्रह्मविद्याका उत्तम अधिकारी है तब ब्रह्मविद्याका उपदेश आरम्भ करनेके पहले उसका महत्त्व प्रकट करते हुए यमराज बोले—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
स्ते उभे नानार्थे पुरुषꣳसिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु
भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥ १॥

श्रेयः=कल्याणका साधन; **अन्यत्**=अलग है; **उत**=और; **प्रेयः**=प्रिय लगनेवाले भोगोंका साधन; **अन्यत् एव**=अलग ही है; **ते**=वे; **नानार्थे**=भिन्न-भिन्न फल देनेवाले; **उभे**=दोनों साधन; **पुरुषम्**=मनुष्यको; **सिनीतः**=बाँधते हैं—अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते हैं; **तयोः**=उन दोनोंमेंसे; **श्रेयः**=कल्याणके साधनको; **आददानस्य**=ग्रहण करनेवालेका; **साधु भवति**=कल्याण होता है; **उ यः**=परंतु जो; **प्रेयः वृणीते**=सांसारिक भोगोंके साधनको स्वीकार करता है; [**सः**=वह;] **अर्थात्**=यथार्थ लाभसे; **हीयते**=भ्रष्ट हो जाता है॥ १॥

व्याख्या—मनुष्य-शरीर अन्यान्य योनियोंकी भाँति केवल कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही नहीं मिला है। इसमें मनुष्य भविष्यमें सुख देनेवाले साधनका अनुष्ठान भी कर सकता है। वेदोंमें सुखके साधन दो बताये गये हैं—(१) श्रेय अर्थात् सदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंसे सर्वथा छूटकर नित्य आनन्दस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त करनेका उपाय और (२) प्रेय अर्थात् स्त्री, पुत्र, धन, मकान, सम्मान, यश आदि इहलोककी और स्वर्गलोककी जितनी भी प्राकृत सुखभोगकी सामग्रियाँ हैं, उनकी प्राप्तिका उपाय। इस प्रकार अपने-अपने ढंगसे मनुष्यको सुख पहुँचा सकनेवाले ये दोनों साधन मनुष्यको बाँधते हैं—उसे अपनी-अपनी ओर खींचते हैं। अधिकांश लोग तो 'भोगोंमें प्रत्यक्ष और तत्काल सुख मिलता है' इस प्रतीतिके कारण, उसका परिणाम सोचे-समझे बिना ही प्रेयकी ओर खिंच जाते हैं; परंतु कोई-कोई भाग्यवान् मनुष्य भगवान्‌की दयासे प्राकृत भोगोंकी आपातरमणीयता एवं परिणामदुःखताका रहस्य जानकर उनकी ओरसे विरक्त हो श्रेयकी ओर आकर्षित हो जाता है। इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमेंसे जो भगवान्‌की कृपाका पात्र होकर श्रेयको अपना लेता है और तत्परताके साथ उसके साधनमें लग जाता है, उसका तो सब प्रकारसे कल्याण हो जाता है। वह सदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंसे सर्वथा छूटकर अनन्त असीम आनन्दस्वरूप परमात्माको पा लेता है। परंतु जो सांसारिक सुखके साधनोंमें लग जाता है, वह अपने मानव-जीवनके परम लक्ष्य परमात्माकी प्राप्तिरूप यथार्थ प्रयोजनको सिद्ध नहीं कर पाता, इसलिये उसे आत्यन्तिक और नित्य सुख नहीं मिलता। उसे तो भ्रमवश सुखरूप प्रतीत होनेवाले वे अनित्य भोग मिलते हैं, जो वास्तवमें दुःखरूप ही हैं। अतः वह वास्तविक सुखसे भ्रष्ट हो जाता है॥ १॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः* ॥ ५ ॥

अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमानाः=अविद्याके भीतर रहते हुए (भी); **स्वयं धीराः**=अपने-आपको बुद्धिमान् (और); **पण्डितम् मन्यमानाः**-विद्वान् माननेवाले; **मूढाः**=(भोगकी इच्छा करनेवाले) वे मूर्खलोग; **दन्द्रम्यमाणाः**= नाना योनियोंमें चारों ओर भटकते हुए; (**तथा**) **परियन्ति**=ठीक वैसे ही ठोकरें खाते रहते हैं; **यथा**=जैसे; **अन्धेन एव नीयमानाः**=अन्धे मनुष्यके द्वारा चलाये जानेवाले; **अन्धाः**=अन्धे (अपने लक्ष्यतक न पहुँचकर इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते हैं) ॥ ५ ॥

व्याख्या—जब अन्धे मनुष्यको मार्ग दिखलानेवाला भी अन्धा ही मिल जाता है, तब जैसे वह अपने अभीष्ट स्थानपर नहीं पहुँच पाता, बीचमें ही ठोकरें खाता भटकता है और काँटे-कंकड़ोंसे बिंधकर या गहरे गड्ढे आदिमें

---

* यह मन्त्र मुण्डकोपनिषद्में भी आया है। (मु० उ० १।२।८)

गिरकर अथवा किसी चट्टान, दीवाल और पशु आदिसे टकराकर नाना प्रकारके कष्ट भोगता है, वैसे ही उन मूर्खोंको भी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विविध दुःखपूर्ण योनियोंमें एवं नरकादिमें प्रवेश करके अनन्त जन्मोंतक अनन्त यन्त्रणाओंका भोग करना पड़ता है, जो अपने-आपको ही बुद्धिमान् और विद्वान् समझते हैं, विद्या-बुद्धिके मिथ्याभिमानमें शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंकी कुछ भी परवा न करके उनकी अवहेलना करते हैं और प्रत्यक्ष सुखरूप प्रतीत होनेवाले भोगोंका भोग करनेमें तथा उनके उपार्जनमें ही निरन्तर संलग्न रहकर मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करते रहते हैं॥ ५॥

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥ ६॥

वित्तमोहेन मूढम्=इस प्रकार सम्पत्तिके मोहसे मोहित; **प्रमाद्यन्तम् बालम्**=निरन्तर प्रमाद करनेवाले अज्ञानीको; **साम्परायः**=परलोक; **न प्रतिभाति**=नहीं सूझता; **अयम् लोकः**=(वह समझता है) कि यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला लोक ही सत्य है; **परः न अस्ति**=इसके सिवा दूसरा (स्वर्ग-नरक आदि लोक) कुछ भी नहीं है; **इति मानी**=इस प्रकार माननेवाला अभिमानी मनुष्य; **पुनः पुनः**=बार-बार; **मे वशम्**=मेरे (यमराजके) वशमें; **आपद्यते**=आता है॥ ६॥

व्याख्या—इस प्रकार मनुष्य-जीवनके महत्त्वको नहीं समझनेवाला अभिमानी मनुष्य सांसारिक भोग-सम्पत्तिकी प्राप्तिके साधनरूप धनादिके मोहसे मोहित हुआ रहता है; अतएव भोगोंमें आसक्त होकर वह प्रमादपूर्वक मनमाना आचरण करने लगता है। उसे परलोक नहीं सूझता। उसके अन्तःकरणमें इस प्रकारके विचार उत्पन्न ही नहीं होते कि मरनेके बाद मुझे अपने समस्त

कर्मोंका फल भोगनेके लिये बाध्य होकर बारम्बार विविध योनियोंमें जन्म लेना पड़ेगा। वह मूर्ख समझता है कि बस, जो कुछ यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता है, यही लोक है। इसीकी सत्ता है। यहाँ जितना विषय-सुख भोग लिया जाय, उतनी ही बुद्धिमानी है। इसके आगे क्या है। परलोकको किसने देखा है। परलोक तो लोगोंकी कल्पनामात्र है इत्यादि। इस प्रकारकी मान्यता रखनेवाला मनुष्य बारम्बार यमराजके चंगुलमें पड़ता है और वे उसके कर्मानुसार उसे नाना योनियोंमें ढकेलते रहते हैं। उसके जन्म-मरणका चक्र नहीं छूटता॥ ६॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार विषयासक्त, प्रत्यक्षवादी मूर्खोंकी निन्दा करके अब उस आत्मतत्त्वकी और उसको जानने, समझने तथा वर्णन करनेवाले पुरुषोंकी दुर्लभताका वर्णन करते हैं—*

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ ७॥

यः बहुभिः=जो (आत्मतत्त्व) बहुतोंको तो; **श्रवणाय अपि**=सुननेके लिये भी; **न लभ्यः**=नहीं मिलता; **यम्**=जिसको; **बहवः**=बहुत-से लोग; **शृण्वन्तः अपि**=सुनकर भी; **न विद्युः**=नहीं समझ सकते; **अस्य**=ऐसे इस गूढ़ आत्मतत्त्वका; **वक्ता आश्चर्यः**=वर्णन करनेवाला महापुरुष आश्चर्यमय है (बड़ा दुर्लभ है); **लब्धा कुशलः**=उसे प्राप्त करनेवाला भी बड़ा कुशल (सफल-जीवन) कोई एक ही होता है; **कुशलानुशिष्टः**=और जिसे तत्त्वकी उपलब्धि हो गयी है, ऐसे ज्ञानी महापुरुषके द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ; **ज्ञाता**=आत्मतत्त्वका ज्ञाता भी; **आश्चर्यः**=आश्चर्यमय है (परम दुर्लभ है)॥ ७॥

व्याख्या—आत्मतत्त्वकी दुर्लभता बतलानेके लिये यमराजने कहा—नचिकेता! आत्मतत्त्व कोई साधारण-सी बात नहीं। जगत्में अधिकांश मनुष्य

तो ऐसे हैं—जिनको आत्मकल्याणकी चर्चातक सुननेको नहीं मिलती। वे ऐसे वातावरणमें रहते हैं कि जहाँ प्रातःकाल जागनेसे लेकर रात्रिको सोनेतक केवल विषय-चर्चा ही हुआ करती है, जिससे उसका मन आठों पहर विषय-चिन्तनमें डूबा रहता है। उनके मनमें आत्मतत्त्व सुनने-समझनेकी कभी कल्पना ही नहीं आती और भूले-भटके यदि ऐसा कोई प्रसङ्ग आ जाता है तो उन्हें विषय-सेवनसे अवकाश नहीं मिलता। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो सुनना-समझना उत्तम समझकर सुनते तो हैं, परंतु उनके विषयाभिभूत मनमें उसकी धारणा नहीं हो पाती अथवा मन्दबुद्धिके कारण वे उसे समझ नहीं पाते। जो तीक्ष्णबुद्धि पुरुष समझ लेते हैं, उनमें भी ऐसे आश्चर्यमय महापुरुष कोई विरले ही होते हैं, जो उस आत्मतत्त्वका यथार्थरूपसे वर्णन करनेवाले समर्थ वक्ता हों। एवं ऐसे पुरुष भी कोई एक ही होते हैं, जिन्होंने आत्मतत्त्वको प्राप्त करके जीवनकी सफलता सम्पन्न की हो; और भलीभाँति समझाकर वर्णन करनेवाले सफलजीवन अनुभवी आत्मदर्शी आचार्यके द्वारा उपदेश प्राप्त करके उसके अनुसार मनन-निदिध्यासन करते-करते तत्त्वका साक्षात्कार करनेवाले पुरुष भी जगत्में कोई विरले ही होते हैं। अतः इसमें सर्वत्र ही दुर्लभता है॥ ७॥

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥ १२॥

गूढम्=जो योगमायाके पर्देमें छिपा हुआ; **अनुप्रविष्टम्**=सर्वव्यापी; **गुहाहितम्**=सबके हृदयरूप गुफामें स्थित (अतएव); **गह्वरेष्ठम्**=संसाररूप गहन वनमें रहनेवाला; **पुराणम्**=सनातन है, ऐसे; **तम् दुर्दर्शम् देवम्**=उस कठिनतासे देखे जानेवाले परमात्मदेवको; **धीरः**=शुद्ध बुद्धियुक्त साधक; **अध्यात्मयोगाधिगमेन**=अध्यात्मयोगकी प्राप्तिके द्वारा; **मत्वा**=समझकर; **हर्षशोकौ जहाति**=हर्ष और शोकको त्याग देता है॥ १२॥

व्याख्या—यह सम्पूर्ण जगत् एक अत्यन्त दुर्गम गहन वनके सदृश है, परंतु यह परब्रह्म परमेश्वरसे परिपूर्ण है, वह सर्वव्यापी इसमें सर्वत्र प्रविष्ट है (गीता ९। ४)। वह सबके हृदयरूपी गुफामें स्थित है (गीता १३। १७; १५। १५; १८। ६१)। इस प्रकार नित्य साथ रहनेपर भी लोग उसे सहजमें देख नहीं पाते; क्योंकि वह अपनी योगमायाके पर्देमें छिपा है (गीता ७। २५), इसलिये अत्यन्त गुप्त है। उसके दर्शन बहुत ही दुर्लभ हैं। जो शुद्ध-बुद्धिसम्पन्न साधक अपने मन-बुद्धिको नित्य-निरन्तर उसके चिन्तनमें संलग्न रखता है, वह उस सनातन देवको प्राप्त करके सदाके लिये हर्ष-शोकसे

रहित हो जाता है। उसके अन्तःकरणमेंसे हर्ष-शोकादि विकार समूल नष्ट हो जाते हैं* ॥ १२ ॥